IJAER/July-August 2021/Volume-10/Issue-4 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

पर्यावरण और हिंदी उपन्यास

Dr. Dinesh Kumar Meena

Assistant professor, Hindi

Government College, Gangapur city

सार

प्रकृति और पुरूष का अन्योनाश्रित संबंध है। वस्तुतः सम्पूर्ण सृष्टि की रचना में इनकी एक दूसरे के पूरक की भूमिका रही है। प्रकृति के अभाव में पुरूष की कल्पना ही दुष्कर है। सत्य तो यह है कि मानव अपनी पर्यावरण की उपज है। पर्यावरण वह परिस्थिति है जो मनुष्य को चारों ओर से घेरे रहती है। इसका मनुष्य के जीवन और क्रियाओं पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। इसके अन्तर्गत वे सभी परिस्थितियां , दशाएं और प्रभाव सम्मिलित हैं जो जैव अथवा जैवकीय समह पर प्रभाव डाल रही है। मनुष्य की कुल पर्यावरण संबंधी प्रणाली में न केवल जीवन मण्डल सम्मिलित है , अपितु इसके प्राकृतिक तथा मानव निर्मित प्रवेश के साथ – साथ उसकी अन्तः क्रियायें भी सम्मिलित हैं। पर्यावरण की विधि सम्मत परिभाषा में पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 की धारा 2 (क (में कहा गया है “ पर्यावरण में जल , वायु , भूमि के अन्तर संबंध सम्मिलित हैं जो जल , वायु , भूमि और मानव जीव अन्य प्राणियों पौधों सूक्ष्म जीवों और सम्पत्ति के मध्य विद्यमान है इस विधि सम्मत परिभाषा को समाज शास्त्रीय मैकाइवर के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है “ पृथ्वी का धरातल और उसकी सारी प्राकृतिक दशाएं , प्राकृतिक शक्तियां जो पृथ्वी पर विद्यमान होकर मानव जीवन को प्रभावित करती है पर्यावरण के अन्तर्गत आती है ” वेबस्टर शब्दकोष के अनुसार पर्यावरण से आशय उन घेरे में रहने वाली परिस्थितियों , प्रभावों और शक्तियों से है जो सामाजिक और सांस्कृतिक दशाओं के समूह द्वारा व्यक्ति और समदाय के जीवन को प्रभावित करता है ” पर्यावरणविद फिटिंग का मानना है कि “ प्राणियों का पारिस्थिकीय मांग ही पर्यावरण है ” युनिवर्सल विश्वकोष के अनुसार “ पर्यावरण उन समस्त दशाओं अभिकरणों तथा प्रभावों का योग है जो किसी जीव , जाति या प्रजाति के विकास बढ़ोत्तरी जीवन और मरण को प्रभावित करता है।

मुख्य शब्द: पर्यावरण, उपन्यास

प्रस्तावना

आज मनुष्य विज्ञान, प्रौद्योगिकी और सूचना तकनीकि क जरिए जिस तीव्रता के साथ लंबी और ऊँची छलांग लगाते हुए लगातार दूरियाँ तय कर रहा है और उसी अनुपात में प्रकृति के साथ छेड़ाछाड़ करते हुए जिन उपलब्धियों पर इतरा रहा है, वही विभीषिका और त्रासदी के रूप में कब उसके सामने आ जाए, वह नहीं जानता।

भूमंडलीकरण के दौर में तथाकथित विकास के नाम पर वनों की अंधाधुंध कटाई, नदियों की गति और दिशा में मनमाना परिवर्तन, औद्योगीकरण और शहरीकरण, खनिज उत्खनन के नाम पर प्रकृति का जरूरत से ज्यादा दोहन, जैव विविधता का क्रमिक ह्रास मनुष्य के सभ्य होते चले जाने का बर्बर इतिहास है।

अंतर्राष्ट्रीय कम्पनियाँ प्रतियोगिता में हैं कि कौन कामगारों का सबसे अधिक शोषण और पर्यावरण को सबसे अधिक बर्बाद कर सकता है। विकास का अर्थ है पर्यावरण का विनाश और व्यक्ति का अमानवीकरण। आज एकरेखीय विकास से मोहविष्ट होकर मनुष्य जल, जंगल, जमीन को नष्ट करता जा रहा है। आदिवासी चिंतक बृजलाल के शब्दों में –"आसमान फटा जा रहा है और हुक्मरान थिगड़े लगाने की बात कर रहे हैं।"

तथाकथित विकास के नाम पर आज राजनेताओं और उद्योगपतियों के गठजोड़ ने जंगलों में रहने वाले आदिवासी समुदायों को विस्थापन का गहरा संकट झेलने पर मजबूर कर दिया है। जंगलों की अंधाधुन्ध कटाई, उत्खनन आदि से विकिरण, प्रदूषण और विस्थापन की समस्या बढ़ती ही जा रही है।

साहित्य चूंकि समय और समाज के साथ चलते हुए उन्नत भविष्य के सृजन का दूसरा नाम है। अतः जीवन और जगत की कोई भी समस्यापरिधि से बाहर नहीं।–विडम्बना उसकी विषय/

परिस्थितिकीय संकट तथा आदिवासियों के विस्थापन की समस्या को लेकर पिछले डेढ़ दशक में कई महत्त्वपूर्ण उपन्यास हमारे सामने आये हैं जिनमें है–'मरंग गोड़ा नीलकण्ठ हुआ' (महुआ माझी, 2012), 'रह गई दिशाएँ इस पार' (संजीव, 2011), 'एक ब्रेक के बाद' (अलका सरावगी, 2008) तथा 'कठ गुलाब' (मृदुला गर्ग, 1996) जो हमें जंगलों में निवास करने वाली मानवता के साथ हो रहे अन्याय व उनकी अनसुलझी समस्याओं से रूबरू कराती है।

वर्तमान राजनैतिकहेतु आर्थिक व्यवस्था ने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को अनायास ही यह अधिकार दे दिया है कि विकास के नाम पर मदद–वे तीसरी दुनिया में पाँव पसारें और फिर मूल निवासियों को ही वहाँ से खदेड़ दें। झारखंड, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा में खनन कंपनियों की लूट को उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। रणेंद्र ने 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में विस्तार से बहुराष्ट्रीय कंपनियों के रूप में उभरे नवऔपनिवेशिक साम्राज्य की सर्वभक्षी 'भूख' को चित्रित किया है।

यह उपन्यास तथाकथित आधुनिक समाज के विकास संबंधी मॉडल को नकारता एक विचारोत्तेजक आख्यान प्रस्तुत करता है। रणेन्द्र इस रचना में झारखंड के असुर आदिवासी समुदाय की भयावह व्यथा हुए कथा को व्यक्त करते–'आंतरिक उपनिवेश्वाद की ओर हमारा ध्यान खींचते हैं। मुख्यधारा के विदूरपित सत्य को उद्घाटित करने वाली इस रचना में झारखंड के आदिवासियों के साथसाथ छत्तीसगढ़ में शिवनाथ नदी के किनारे बसे बिकने–, केरल की सी0के0 जानू, महाराष्ट्र के कोंकण की सुरेखा दलवी, छिंदवाड़ा की दयाबाई, मध्यप्रदेश के रीवा जिले की दुवासिया देवी आदि की चर्चा करते हुए विमर्श के इस भूगोल को विस्तार देते हुए राष्ट्रीय स्तर पर आदिवासियों के साथ हो रहे अन्याय और सत्ता के खूनी खेल की असलियत को स्पष्ट किया गया है। असुर आदिवासियों की अपराजेय श्रमशक्ति और जिजीविषा को दिखाते हुए रणेन्द्र लिखते हैं –"अपने देवता सिंगबोंगा की तरह असुर आदिम जाति कभी नहीं थकती। आग में उत्पन्न लोहा पिघलाने और पिघला लोहा खाने वाले वे लोग खुद ही लोहा थे।"

आदिवासी जिन इलाकों में रहते हैं वो आमतौर पर बीहड़खनिज बहुतायत में मिलते हैं। इस क्षेत्र की सुदूर क्षेत्र हैं जहाँ–धरती के गर्भ में यूरेनियम बाक्साइट, लोहा और कोयला जैसे बहुमूल्य खनिज अटे पड़े हैं। पूंजी के ढेर पर बैठी ताकतों की दृष्टि इन खनिज संपदाओं की ओर लगातार लगी रहती है इसीलिए विकिरण के खतरे की अनदेखी करते हुए धड़ल्ले से यूरेनियम खनन हो रहा है और न्यूक्लियर प्लांट लगाए जा रहे हैं।

हिन्दी साहित्य में यूरेनियम विकिरण की समस्या को केन्द्र में रखकर रचा गया महुआ माजी का उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकण्ठ हुआ' वाकई एक धमाकेदार सूचना के रूप में उपस्थित हुआ है। यह उपन्यास महुआ माजी के चार वर्ष के शोधकार्य का – परिणाम है। निःसन्देह एक खोजी पत्रकार और गंभीर शोधार्थी की तरह झारखंड के बीहड़ जंगलों और जापानअमेरिका के – बड़ी जरूरी जानकारी को संजोया है। समाजशास्त्री–परमाणु संयंत्रों का जायजा लेकर उन्होंने विषय से जुड़ी हर छोटी,

मानवशास्त्रीय और पर्यावरणीय शोधपूर्ण समझ से लिखी गयी यह रचना झारखंड की यूरेनियम खादानों से निकलने वाले विकिरण, प्रदूषण और उसके बीच आदिवासियों के विस्थापन की पीड़ा को व्यक्त करती है। यूरेनियम के रेडिएशन और उससे उपजे स्वास्थ्य संबंधी दुष्प्रभावों ने पूरी दुनिया का ध्यान खींचा है। उपन्यास में विनाश के व्यापक खतरों की ओर संकेत करते हुए 'माजी' लिखते हैं कि –"परमाणु संयंत्रों में एक हजार मेगावाट बिजली पैदा करने से करीब 27 किलोग्राम रेडियोधर्मी कचरा उत्पन्न होता है और उसे निष्क्रिय होने में एक लाख साल से भी ज्यादा का वक्त लग सकता है।"

जाम्बीरा की पीढ़ी जंगल और प्रकृति के साथ अपना जीवन व्यतीत करते आए थे परन्तु बाहरी लोगों के आगमन और खोजों के बाद उनका जीवन पूर्णरूप से बदल गया। उनके भोलेपन के कारण वह निकट आते संकट को भांप न सके और उस भयावह संकट का अनजाने में ही शिकार होते रहे। उन्हें बहुत देर से इस खतरे का पता चलता है जब विकिरण और प्रदूषण से अत्यधिक आदिवासी प्रभावित हो चुके होते हैं। मरंग गोड़ा में लौह खदान से यूरेनियम खदान तक शामिल हैं और स्वाभाविक ही इसके कारण विकिरण और प्रदूषण की समस्या बढ़ती चली गयी। असल में यह केवल मरंग गोड़ा के आदिवासियों की समस्या नहीं है अपितु पूरी दुनिया में जहाँजहाँ यूरेनियम खदानें हैं–, घूमकर तो देखें। अमेरिका, कनाड, आस्टे्रलिया, दक्षिण अफ्रिकाहर जगह के आदिवासी किसी न किसी रूप में पीड़ित हैं। यह एक विडम्बना ही है कि अधिकतर यूरेनियम ..... खदानें, परमाणु रियेक्टर या परमाणु कचरा फेंके जाने वाले टेलिंगडैम आदिवासी इलाकों में ही होते हैं।"

मरंग गोड़ा वस्तुतः जमशेदपुर से तीस चालीस किलोमीटर दूर स्थित–'जादूगोड़ा' नामक वह कस्बा है जहाँ सन् 1967 में शुरू हुए यूरेनियम खनन से आसपास के पंद्रह गाँवों के तीस हजार से अधिक लोग बुरी तरह विकिरण से प्रभावित हुए थे। जो जमीन रेडियाधर्मी धातु यूरेनिमय के जहर को पीकर देशदुनिया को ऊर्जा प्रदान कर रही है–, वह यही आबादी है जो नीलकण्ठ हुई है। लेखिका रेडिएशन से होने वाली बीमारियों की ही सूचना नहीं देना चाहती, वरन तिथियों में बंधे इन ग्लोबल तथ्यों को भी पाठक तक संप्रेषित करना चाहती है –'1546 से जर्मनी के स्वीबर्ग में खनन मजदूरों की मौत फेफड़े की रहस्मयी बीमारी से हो रही थी। 1879 में जाकर पता चला कि उनमें से अधिकतर मौतें फेफड़े के कैंसर के कारण हुईं और 1897 में वैज्ञानिकों ने यह पता लगा लिया कि यूरेनियम खनिज रेडियोधर्मी होता है। पृ) 0 185-86) महुआ माजी सगेन के नेतृत्व में खड़े किए गए मोआर का जिक्र करती है (मरंग गोड़ाज ऑर्गेनाइजेशन अगेंस्ट रेडिएशन) , लेकिन मुख्यतः इसलिए कि इससे जुड़े फिल्मकारमें आयोजित अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण पत्रकार आदित्य श्री की मरंग गोड़ा रेडिएशन पर केंद्रित फिल्म को जापान– फिल्म फेस्टिवल में शामिल किया जा सके और इस प्रक्रिया में पूरे विश्वभर में तेजी से फैली रही न्यूक्लियर विरोधी आवाजों को रिकार्ड किया जा सके। इस श्रृंखला में उनके लिए यूरोप के ग्रीन मूवमेंट से जुड़े बुद्धिजीवियों की विश्वविख्यात संस्था 'ग्रीनपीस' की उपलब्धियों को गिनाना, 1986 में रूस के यूक्रेन में घटित चेरनोबिल परमाणु संयंत्र दुर्घटना और 2011 में जापान में फुकुशिमा परमाणु संयंत्र दुर्घटना का वर्णन करना सरल हो जाता है। तब किसी भी औसत जिज्ञासु की तरह इन दुर्घटनाओं के आलोक में उन्हें यह सवाल उठाना बेहद जरूरी लगता है कि –

"जब परमाणु संयंत्र इतने खतरनाक हैं, तब किसी दुर्घटना की बाट न जोहकर इन्हें बंद क्यों नहीं कर दिया जाता?" महुआ माजी इन्हीं और इन्हीं जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण सवालों को उठाती हुई अन्य सूचनाएँ इकट्ठा करती हैं। वे जान चुकी हैं कि "अंतर्राष्ट्रीय मापदंडों के अनुसार किसी भी सामान्य व्यक्ति के लिए एक साल में अधिकतम एकमिली सिवर्ट ;उेअध्लद्ध तक ही विकिरण की मात्रा को सुरक्षित सीमा के अंदर माना गया है।" (पृ0 228) लेकिन पाती हैं कि अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा मानकों को धता बताकर गाँव के बिल्कुल पास 50 फुट से भी कम दूरी पर टैलिंग डैम बना लिए जाते हैं और इस कचरे में से बीनकर रेडियो एक्टिव पत्थरों को घर की दीवारों पर भी लगा लेते हैं साधनहीन गरीब ग्रामवासी। माजी ने इस उपन्यास के जरिए सगेन के रूप में युवा पीढ़ी के प्रतिरोध और अक्रोश को भी दिखाया है। आर्थिक तंगी के बावजूद अपने ताऊ की मदद से सगेन स्नातक तक की पढ़ाई पूरी करता है और आदिवासी समुदाय की पर्यावरणीय समस्याओं को जानने लायक बनता है। जापान के परमाणु वैज्ञानिक प्रोफेसर बोयदे जब मरंग गोड़ा आकर जाँच करते हैं तो पाते हैं कि वहाँ हवा में गामा किरणों की मात्रा

अनुमन्य सीमा से दस गुना ज्यादा है। आदिवासियों के हितों को दरकिनार कर मरंग गोड़ा की धरती से जो यूरेनियम निकाला जा रहा है वह चारो ओर जहर फैला रहा है। सगेन ऐसे बद्धिजीवियों का विरोध करता है जो महानगरों में विकिरण पर हाय–न आदिवासी क्षेत्रों में इस भीषण संकट को देखने के बजाए अपनी आँखें मूंद लेतेतौबा मचाते हैं लेकिहैं। उपन्यास के अंतिम अध्यायों में विकास के वैकल्पिक मॉडल की बेहद सारगर्भित चर्चाएँ समाहित की गई हैं। मोआर अनुरोध करता है कि – "यूरेनियम को धरती के भीतर ही पड़े रहने दो। उसे मत छेड़ो वरना सांप की तरह वह हम सबको डस लेगा।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इन उपन्यासों में न केवल आदिवासियों के विस्थापन और पर्यावरण पर गहराते संकट की ओर हमारा ध्यान खिंचा गया है वरन् विकास के पूंजीवादी मॉडल की गंभीर विसंगतियों को भी पूरी विश्वसनियता, तटस्थता से विश्लेषित किया गया है। जंगलों की अंधाधुंध कटाई, उत्खनन व उत्सर्जन द्वारा बढ़ रहे प्रदूषण की वजह से आदिम मानव का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है क्योंकि जिस प्रकार पानी के बिना मछली का कोई अस्तित्व नहीं, उसी प्रकार जंगलों के बिना आदिम मानव का अस्तित्व न के बराबर है। नई परिस्थितिकीय सभ्यता वैज्ञानिक प्रगति या तकनीकि विकास की विरोधी नहीं, बस इनके अंधाधुंध दुष्प्रयोगों की विरोधी है।

इन उपन्यासों में पारिस्थितिकी संकट और स्थानीय लोगो की समस्याओ को लेकर, भूमंडलीकरण के बाद उत्पन्न हुयी समस्याओ का आदिवासी जीवन पर प्रभाव, खनन से उत्पन्न हुए विकरण के खतरे ग्लोबल वार्मिंग की समस्या, विस्थापन वन अधिकारों का उल्लघन भूमि अधिग्रहण तथा विदेशी कम्पनियों द्वारा शोषण जैसी समस्याओ पर केन्द्रित है। ये उपन्यास जंगलो में रहने वाले लोगो की जीवन संस्कृति और पर्यारण की समस्याओ से रूबरू कराते है। वर्तमान राजनीतिक व्यस्था में अर्थव्यस्था का काफी महत्त्व है। आर्थिक प्रगति के नाम पर तेजी से जंगलो में घुसती बहुराष्ट्रिय कंपनियों ने अत्यंत तवाही पैदा की है। यह तवाही अब विध्वंश बन गयी है। जिसका प्रतिउत्तर विकाश परियोजनाओ का विरोध, हिंशक प्रदर्शन और नक्सलबाद के रूप में देखने को मिलता है। झारखण्ड, छत्तीसगढ, उडीसा में खानन कंपनियों द्वारा मूल निवासियो के साथ व्यबहार और उनका विरोध इसके उदाहरण है। 'ग्लोबल गाँव का देवता' उपन्यास में रणेंद्र ने विस्तार से बहुराष्ट्रीय कंपनियों के रूप में उभरे नवउपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद की सर्वभक्षी भूख को चित्रित करता है। यह उपन्यास तथाकथित समाज का विकास संबधी मॉडल को नकारता है। रणेंद्र की यह रचना झारखण्ड राज्य के असुर आदिवासी समाज की भयावह व्यथा को व्यक्त करते हुए आन्तरिक उपनिवेशवाद की ओर हमारा ध्यान खीचाती है उपन्यास झारखण्ड के साथ साथ अन्य राज्यों के दिवासी समुदायों की व्यथा को भी बखूवी व्यक्त करता है। रणेंद्र केरल की सी। के. जानू, महाराष्ट्र के कोंकण की सुरेख दलवी आदि की चर्चा करते हुए विमर्श के इस भूगोल को विस्तार देते हुए राष्ट्रीय स्तर पर आदिवासियों के साठ हो रहे अन्याय और सत्ता के खूनी खेल की असलियत को उजागर करते है । रणेंद्र लिखते है कि, "सामान्य तौर पर आकाशचारी देवताओ को जब अपने आकाश मार्ग से या सेटेलईट की आँखों से छत्तीशगढ़, उडीसा, मध्यप्रदेश, झारखण्ड आदि राज्यों की खनिज सम्पदा, जंगल और अन्य संसाधन दिखते है तो उन्हें लगता है कि अरे, इन पर तो हमारा हक है। उन्हें मालूम है की राष्ट्र राज्य तो वे ही है, तो हक तो उनका ही हुआ सो इन खनिजो पर ,जंगलो में, घूमते हुए लंगोट पहने असुर - बिरिजिया, उराँव– मुंडा आदिवासी, दलित सदन दिखते है तो उन्हें बहुत कोफ़्त होती है । (रणेंद्र, ग्लोबल गाँव का देवता) इस तरह से रणेंद्र बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा तैयार किये जा रहे नवउपनिवेशवाद के मॉडल और पर्यावरण निम्नीकरण के प्रयासों की तीव्र आलोचना करते है।

वही दूसरी ओर यूरेनियम विकिरण की समस्या को केंद्र में रखकर लिखा गया उपन्यास मरंग गोडा नीलकंठ हुआ (महुआ मांझी) एक संभावित समस्या को व्यक्त करता है । यह उपन्यास महुआ मांझी के एक पत्रकार के रूप में चार वर्ष के शोध का परिणाम है। यह रचना उन्होंने समाजशास्त्री, मानव शास्त्री और पर्यावरण शोधकर्ता के रूप में लिखी है। जो झारखंड की यूरेनियम खदानों से निकलने वाले विकिरण और उनमे रहने वाले स्थानीय लोगो के विस्थापन को व्यक्त करती है। मांझी लिखती है, "परमाणु सयंत्रो में एक हज़ार मेगावाट विजली पैदा करने से करीब 27 किलो ग्राम रेडिओधर्मी कचरा पैदा होता है और उसे निष्क्रिय होने में हज़ार साल से भी

अधिक समय लग सकता है यह एक विडम्बना ही है की अधिकतर यूरेनियम खदाने, परमाणु रिएक्टर या परमाणु कचरा फेके जाने वाले टेलिंग डैम आदिवाशी इलाकों में ही होते है।" आदिवासियों की समस्या सिर्फ भारत तक ही सीमित नहीं है पूरी दुनिया में देखा जाये तो आदिवासी किसी न किसी रूप में पीड़ित या शोषित किये जा रहे है। महुआ मांझी का उपन्यास 'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ' वस्तुतः जमशेदपुर

से 30 किलो मीटर दूर स्थित जदूगोंडा नमक वह क़स्बा है जहाँ 1967 में शुरु हुए यूरेनियम खनन से आस पास में 15 गांवो के लोग विकिरण से प्रभावित हुए लेखिका कहती है कि जो जमीन यूरोनियम को पीकर नीलकंठ हुई वही दुनिया भर को रोशानी प्रदान करती है।

हिंदी साहित्य में पर्यावरण के विभिन्न पहलुओ प्रकृति के सौन्दर्य चित्रण व मानवीकरण से लेकर पर्यावरण प्रदूषण, भूमंडलीकरण व अन्य महत्त्वपूर्ण समस्याओ पर मंथन किया गया है। चिंतन करने के साथ ही साथ उन समस्याओ का तार्किक व उपयुक्त समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। साहित्य मानव को प्राकृत से तालमेल बैठाने के सुझावों और संशाधनों के उचित उपयोग की बात करता है मानव का सम्पूर्ण अस्तित्व पृथ्वी से ही जुड़ा हुआ है वह आपने जीवन की सभी आवश्यकताओ की पूर्ती के लिए प्रकृति पर पूर्णतः निर्भर है अतः उसे नष्ट कर वह स्वयं भी शुरक्षित नहीं रह सकता है। मनुष्य को अपने अस्तित्व को बचने के लिए सतत रूप से संशाधनो के उपयोग के विषय में सोचना अनिवार्य है पर्यावरण संरक्षण की दिशा में तब तक कोई प्रयास सफल नहीं हो सकता जब तक व्यक्तिगत रूप से प्रयास नहीं किये जायेगे, सिर्फ सरकारों के या संयुक्त राष्ट्र जैसी संस्थाओं पर निर्भर रहना ठीक नहीं है बढ़ता जनसँख्या दबाव पर्यावरण संरक्षण की दिशा में सबसे हानिकारक पहलू है। बढती जनसँख्या न सिर्फ संशाधनो पर दबाव बनती है बल्कि एक अविवस्था भी पैदा करती है जो सामाजिक रूप से विध्वंस का कारण बनती है। अतः हमें पर्यावरण संरक्षण की दिशा में कोई भी कदम उठाने से पहले जनसँख्या नियंत्रण की भी बात करनी होगी. सरकारों को इस दिशा में सख्त कानूनों के माध्यम से पर्यावरण विषयक नीतियों को लगू करने तथा लोगों में पर्यावरण के प्रति संवेदना पैदा करने की दिशा में जागरूकता कार्यक्रमों के चलाये जाने की आवश्यकता है।

उद्देश्य

1. पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु पर्यावरणीय स्थिति एवं समस्यायो का अध्ययन के लिए
2. पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु संभागीय प्रयासों के अध्ययन के लिए

प्रकृति और पर्यावरण

प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का दृष्टिकोण पश्चिम के लोगों का है जबकि भारतीय दृष्टिकोण में प्रकृति हमारे लिये पूजनीय रही है। भारतीय मूल्य प्रकृति को पोषण करने का है दोहन करने का ना कि शोषण करने का अतः इसे नैतिक कृत्य समझा जा सकता है। समझने की दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि गाय का दोहन करते हैं – वह हमें दूध देती है। परन्तु दोहन से पूर्व हम उसका पोषण करते हैं, अतः उक्त दोहन नैतिक कार्य है। यदि गाय का पोषण न कर केवल दोहन में ही विश्वास रखते हैं तो उसे अनैतिकता की श्रेणी में समझा जायेगा। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि भारतीय नागरिक भी पश्चिम के भौतिकवादी विकास की अंधी दौड़ और चकाचैंध संस्कृति से प्रभावित होकर पानी के स्त्रोतों, हवा, नदियों व जमीन को प्रदूषित करने में अग्रसर होते जा रहे हैं, जिससे पर्यावरण असंतुलन बढ़ता ही जा रहा है जो नैतिक दृष्टि से अवांछनीय है, इस प्रकार के प्रदूषित वातावरण के फलस्वरूप सामाजिक असंतुलन से असमानता, संघर्ष, शोषण की प्रवृत्ति, अत्याचार, अनाचार, व्याभिचार, स्वयं के स्वार्थ हेतु समाज को बली वेदी पर चढ़ा देना आदि – आदि बढ़ते जा रहे हैं जिसे भारतीय मूल्यों के प्रतिकूल ही समझा जायेगा। कहने का आशय यह है कि हमारा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक पर्यावरण निरंतर गड़बड़ा रहा है जो नैतिक दृष्टि से भी अनुचित है। स्वार्थमय प्रवृत्ति को समाप्त कर पर्यावरण को व्यक्तिगत या संकुचित दृष्टि से न देखकर समग्र दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता है जो व्यक्तिगत से ऊपर उठकर मानव मात्र पर पर्यावरण असंतुलन से पड़ने वाले दुष्प्रभावां को खत्म करते हुए मानव एवं प्रकृति के बीच सह अस्तित्व की अभिवृत्तियों को विकास करने की आवश्यकता है जो नैतिक आधार पर खरे उतर सकें। अतः मानव प्रकृति का एक दूसरे से सह संबंध और उन सबका प्रकृति से सह – अस्तित्व के आधार पर नैतिकता को समझा जा सकता है।

प्रकृति की सुन्दरता जो कला के रूप में हमारे सम्मुख प्रकट होती है जो हमारे दिल और दिमाग को लुभाती है। इस सुन्दरता में सम्पूर्ण जीवन, हमारी खुशियाँ हमारी खोजों, आविष्कार एवं सुख और स्वास्थ्य आदि सब कुछ सम्मिलित हैं। अर्थात् प्रकृति की परिधि के बाहर हम कुछ नहीं सोच सकते। अतः यह हमारा अभिन्न जीवन है। मान

व समाज को इसके साथ दोहन इतना ही करना चाहिये जितना कि व्यक्ति एवं समाज के निर्वाह एवं विकास हेतु आवश्यक है। यदि कोई व्यक्ति विशेष अपने ही स्तर पर समाज हित में प्रकृति का दोहन कर रहा है जिससे संतुलन नहीं बिगड़ रहा है तो उसे नैतिक कृत्य ही समझा जा सकता है और वही व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से कृत्य करते हुए पर्यावरण सन्तुलन को नहीं बिगाड़ते हुए कार्य करता है जिसका परिणाम सारी मानव जाति के हित में सिद्ध होने जा रहा है तो ऐसे व्यक्ति का कृत्य भी नैतिकता से कार्य करता हुआ समझा जायेगा। लेकिन कभी – कभी व्यक्तिगत रूप से कार्य सम्पादन में पर्यावरण को प्रभावित करते हुए कार्य करता है जो सार्वजनिक हित में हो, तो ऐसे कृ त्यों को नैतिकता की श्रेणी में ही रखा जायेगा। क्योंकि उसने अपने व्यक्तिगत स्वार्थ हेतु पर्यावरण को प्रदूषित नहीं किया है, बल्कि मानव समाज के हितों को साधने के लिये किया है। इसके विरूद्ध यदि मनुष्य प्रकृति के दोहन औ र संरक्षण की भावात्मक भावना को लेकर समाज के विरूद्ध कार्य करता है तो इस प्रकार के व्यक्तिगत हित समस्त मानव जाति के समान एवं सामूहिक नुकसान पहुंचाता है, क्योंकि मनुष्य का समान हित सर्वापरि होता है उस स मय भावात्मकता एवं व्यक्तिगत दृष्टिकोण गौण हो जाते हैं।

यह निर्विवाद तथ्य है कि पर्यावरण संरक्षण मानव का स्वयं अपने हित में, सर्वाधिक महत्वपूर्ण दायित्व है। अपने पै रों में कुल्हाड़ी मारने का कृत्य व्यक्ति निजी हितों से प्रेरित होकर करता है, इस तरह उसके द्वारा सामूहिक अहित का अपराध अनजाने हो जाता है। स्वयं ही अज्ञानतावश अपनी ही संतानों की भलाई की अनदेखी करने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिये ही अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर विधिसम्मत प्रावधानों की आवश्यकता मानव जाति के हित चिन्तकों ने गंभीरता से अनुभव की है। तद्नुसार सम्पूर्ण विश्व में कानूनों के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण की प्रक्रिया को प्रभावी बनाया जा सकता है। पर्यावरण संरक्षण का सैद्धांतिक आधार सामाजिक न्याय है। पृथ्वी कि सी एक की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है पूर्वजों से प्राप्त इस धरोहर की रक्षा का, आगामी पीढ़ियों के हित में हमारी पीढ़ि का नैतिक दायित्व है। आर्थिक और भौतिक विकास की अंधी दौड़ में हमारे पर्यावरण को अकल्पनीय क्षति प हुंचाई है। इसमें विश्व के विकसित राष्ट्रीय का अपराध सर्वाधिक है। पर्यावरण की क्षति को वर्तमान परिणाम और भावी संभावनाओं पर सर्वप्रथम ध्यान भी पश्चिमी राष्ट्रों का ही गया है। पर्यावरण संरक्षण एक वैचारिक आन्दोलन के रूप में पश्चिमी राजनीति में सर्वप्रथम 1970 के दशक में उभर कर सामने आया और आज पूरे विश्व में फैल ग या है। जलवायु परिवर्तन एवं ग्लोबल वार्मिंग से निपटने के लिए विश्व के राष्ट्र डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन में 7-18 दिसम्बर 2009 में एकत्रित हुए इस सम्मेलन का मुख्य मुद्दा था विकसित और विकासशील राष्ट्र 2020 तक ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में भारी कटौती लाने की घोषणा करें तथा विकसित राष्ट्र, विकासशील एवं गरीब राष्ट्रों को इन खतरों से निपटने के लिए आर्थिक एवं तकनीकी मदद प्रदान करने की घोषणा करें। इस सम्मेलन पर विश्व की नजर टिकी थी, किन्तु यह सम्मेलन बिना किसी ठोस निष्कर्ष पर ही समाप्त हो गया। पर्यावरणविदों के अनुसं धान, अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों एवं राष्ट्रीय और प्रादेशिक अनुसंधानों से पर्यावरण की अनेक समस्यायें सामने आयी जि समें जलवायु परिवर्तन, ओजोन परत में छेद, नाभकीय प्रदूषण, रेडियोधर्मिता, वन सम्पदा का ह्रास, वन्य जीवों की घटती संख्या, पानी का गहराता संकट, जनसंख्या विस्फोट, खाद्यान्न संकट के साथ ही जल, वायु, ध्वनि, मृदा इत्यादि समस्यायें का स्वरूप ही देश और दुनिया के सामने आ चुका है।

पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु पर्यावरणीय स्थिति एवं समस्यायें –:

विश्व व्यापी पर्यावरणीय समस्याओं में मध्यप्रदेश और मध्यप्रदेश में दो संभाग जबलपुर और सागर संभाग तथा इन के अन्तर्गत सम्मिलित लगभग 13 जिलों का योगदान बिल्कुल नगण्य है। दोनों संभाग मध्यप्रदेश के मध्य दक्षिण में स्थित हैं। जिनका भौगोलिक विस्तार 91,894 वर्ग कि. मी है। जिसमें 2001 की जनगणना के अनुसार 1 करोड़ 6 8 लाख , 2 हजार 56 की आबादी निवास करती है। इनमें पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं का अध्ययन किया गया है। ध्वनि , वायु, जल, मृदा, नाभिकीय, ठोस अपशिष्ट, जैव, तापीय, समुद्री अनेक प्रकार की समस्यायें देश व्यापी एवं वि श्वव्यापी सामने आयी लेकिन उक्त समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में जबलपुर और सागर संभाग का अध्ययन किया गया तो दोनों संभागों में मुख्यतया जल, वायु, ध्वनि, ठोस अपशिष्ट, जैव अपशिष्ट प्रदूषण संबंधी समस्यायेंही देखी जा स कती है। जबलपुर संभाग में स्टोन क्रेशर्स से धूल उसर्जन की समस्या, कटनी जिला में चूना भट्ठों में उत्पन्न वायु प्रदू षण की समस्या, डेयरी उद्योगों में परियट नदी इमलिया में प्रदूषण की समस्या, प्रमुख रूप से सामने आयी। इसके अतिरिक्त संभाग को औद्योगिक संभाग भी कहा जाता है। मध्यप्रदेश के चार महानगरों में एक जबलपुर में कारखा ना अधिनियम अन्तर्गत 245 उद्योग पंजीकृत हैं। जबकि पंजीकृत लघु उद्योगों की संख्या 1158 है। इन उद्योगों से निकलने वाले अपशिष्टों से जहां इनके आसपास बहने वाली प्राकृतिक जल स्त्रोत दूषित है। वहीं इनकी चिमनियों से निकलने वाला धुआं वायु को प्रदूषित कर रहा है। उ़द्योग और वाहनों की अधिकाधिक आवाजाही ने जल, ध्वनि और वायु तीनों प्रकार के प्रदूषण की समस्या को जन्म दिया है।

जनसंख्या की अधिकता से गंदगी , भुखमरी , निर्धनता , बेरोजगारी , अपराध और तरह-तरह की सामाजिक समस्यायें जन्मी है। जबलपुर संभाग स्वास्थ्य सुविधाओं के लिये अत्यधिक प्रसिद्ध है। यहां एलोपैथिक और आयुर्वेदिक सभी प्रकार की लगभग 10 हजार से अधिक शासकीय और अशासकीय स्वास्थ्य केन्द्र है जिनसे निकलने वाला अपशिष्ट, नगरीय निकायों में एकत्रित होने वाले अपशिष्ट और उपयोग होने वाली पोलीथिन एवं खतरनाक अपशिष्टों से पर्यावरण की समस्यायें उत्पन्न हुई है। इसी तरह सागर संभाग में शास न द्वारा प्रदूषण से संबंधित तीन प्रकार की समस्याओं का उल्लेख किया गया, ध्वनि, वायु और जल। जिसके प्रदूष क हैं वाहन, नगरीय निकायों से उत्सर्जित जल, मल, कचरा, पोलीथिन, प्लास्टिक तथा जैव अपशिष्ट इत्यादि। इ स तरह दोनों संभागों में पर्यावरण प्रदूषण सर्वाधिक जबलपुर, कटनी, छिंदवाड़ा, बालाघाट में जबकि सागर संभा ग में सागर, दमोह, छतरपुर में उल्लेखनीय है।

पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु संभागीय प्रयास-:

पर्यावरण प्रदूषण को रोकने या नियंत्रित करने जहां पर्यावरण मंत्रालय भारत सरकार और मध्यप्रदेश शासन कार्य करता है वहीं पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन के लिये देश के अन्य मंत्रालय, जल संसाधन, वन इत्यादि भी कार्य क रते हैं। लेकिन इन सब में अहम भूमिका पर्यावरण विभाग की होती है। जो पर्यावरण प्रदूषकों की जांच कर उनके विरूद्ध कार्यवाही करने जिला प्रशासन और न्यायालय को मामले प्रस्तुत करती है। इस दृष्टि से पर्यावरण एवं हाऊ सिंग मंत्रालय मध्यप्रदेश शासन के अधीन कार्यरत म. प्र. प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड कीभूमिका उल्लेखनीय है। जबलपुर और सागर दोनों संभागों में म. प्र. प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित है। जो प्रदूषण नियंत्रण के लिये सतत् कार्य, नवीन अनुसंधान, जन जागरूकता के लिये तथा प्रदूषकों की जांच कर कार्यवाही के लिये प्रकरण तैयार करने का कार्य करती चली आ रही है।

विशिष्ट मेलों में सार्वजनिक प्रदर्शनियों एवं प्रचार प्रसार कर भी जन जागृति लाने की कोशिश शासन द्वारा की जा ती है। इसके बाद भी यह प्रयास पर्याप्त नहीं है शासन और सामाजिक संस्थाओं के प्रयासों एवं कार्यों से प्रदूषण की

समस्या नियंत्रित नहीं हो सकती, बहुत जरूरी है मनुष्य और प्रकृतिक के बीच बढ़ रही दूरियों को कम करने की। इस बढ़ती खायी को पाटने की। इसके लिये शासन की औपचारिक कार्यवाही कारगुजारी और सामाजिक संस्थाओं के दिखावे के समान प्रयास कारगर नहीं हो सकते, तब तक, जब तक आम नागरिक इस मुहिम का हिस्सा न बन जाये। आम नागरिकों में जब तक प्रकृति के संरक्षण एवं संवर्द्धन तथा पर्यावरण को सुरक्षित बनाये रखने की नैतिक जिम्मेदारी का एहसास आचरण में तब्दील नहीं होगा जब तक पर्यावरण संरक्षण संबंधी संवैधानिक अधिकार एवं कानूनों से भी बहुत बड़े परिवर्तन की संभावना एक दिवा स्वप्न ही साबित होगी। शोध अध्ययन से एक बात निक लकर सामने आयी कि जबलपुर संभाग में पेंच और नर्मदा नदी को प्रदूषण से बचाने तथा इसमें जल ग्रीष्मकाल में भी पर्याप्त बना रहे इसके लिये आम नागरिकों को विभिन्न बैनर और समूहों के साथ आगे आना पड़ा जल स्तर को बनाये रखने छोटे – छोटे शहरों एवं गांवों में बोरी बंधान किया गया तथा श्रमदान कर उसमें से कचरा निकालकर उसके जल को साफ किया गया, इसी तरह सागर संभाग में सागर के तालाब को आम जनता ने संरक्षण दिया मु हिम के तहत सुनार नदी को हटा, रहली, गढ़ाकोटा में लोगों ने बड़ी मात्रा में साफ – सफाई की तथा बोरी बंधान किया। यह ऐसे कार्य हैं, जिन पर शासन करोड़ों खर्च भी करता, तब भी वह परिणाम प्राप्त नहीं हाता जो बगैर खर्च किये प्राप्त हुआ। पर्यावरण प्रदूषक कानून, नियम अधिनियम और शासन के लठ्ठ से कम आम नागरिकों की त लवार की तरह तेज निगाहों की धार, उनकी जागृति जुनूनों और सामूहिक अभियान एवं कार्यवाही से ज्यादा डरती है।

खोजी पत्रकार और हमारे शोध कार्य की प्रकृति भले ही अलग – अलग हो लेकिन मैंने शोध कार्य करते समय बहुत सारे अवसरों पर मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मैं शोधकर्ता नहीं बल्कि एक खोजी पत्रकार की भूमिका का निर्वहन क र रहा हूं। खासकर तब, जब जबलपुर संभाग में बालाघाट, कटनी, जबलपुर और छिंदवाड़ा में स्थित रासायनिक उद्योगों, कल – कारखानों और स्टोन क्रेशर्स से निकलने वाले धुएं और अवशिष्ट से हो रहे पर्यावरण प्रदूषण को शो ध प्रबंध में चित्रित करने के लिये मैं छायाचित्र खींच रही थी और दूसरे तब, जब हिन्दू धर्म के महत्वपूर्ण पर्व नव रात्रि पर्व पर देवी विसर्जन के छायाचित्रों को कैमरे में कैद करते समय इसके अतिरिक्त पर्यावरणीय समस्याओं के ज्ञात करने के लिये चिकित्सालयों और नगरीय निकायों से निकलने वाले अवशिष्टों को खोजते और तथ्यों को एकत्रि त करते समय। एक महिला शोधार्थी होने के कारण अनेक निजी और शासकीय संस्थाओं में यश और अपयश दोनों का सामना करना पड़ा। शासकीय तथ्यों को जुटाने में मुझे काफी कठिनाई महसूस हुई। पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के सागर और जबलपुर स्थित संभागीय कार्यालयों से तथ्यों को जुटाने में मुझे सूचना के अधिकार अधिनियम का सहारा लेना पड़ा। वहीं दोनों संभागों की प्राथमिक जानकारी के लिये संभागीय कार्यालयों में अधिकारियों और कर्मचारियों के कई बार चक्कर लगाने पड़े, फिर भी शोध प्रबंधन में प्राथमिक और द्वितीयक समंकों का उपयोग कि या गया और यथासंभव समस्या और समाधान के तथ्यांकित विश्लेषण में वस्तुनिष्ठता को ध्यान में रखा गया। पर्याव रण संरक्षण के लिये सुझाव –:

शोध उपरान्त शोधार्थी ने यह अनुभव किया कि पर्यावरण संरक्षण और संवर्द्धन हेतु शासकीय प्रयास ही पर्याप्त नहीं है, इसके लिये शोधार्थी ने अनेक सुझाव पस्तुत किये हैं –:

यथासंभव प्रदूषण किया ही न जाये –:

" उपयोग करो और फेंको " की संस्कृति प्रदूषण का बहुत बड़ा कारण है। अतः ऐसे आइटम का कम से कम उपयो ग किया जाए, जो प्रदूषण को बढ़ाते हैं और कहीं भी न फेंककर उसे व्यवस्थित किया जाये। उदाहरणार्थ बाजार से सामान लाने की प्लास्टिक की थैलियाँ, खाने – पीने के काम आने वाले प्लास्टिक के प्याले, प्लेट, बोतल अनेक चिकित्सा उपकरण इत्यादि को गलाकर पुनः वस्तुएं बनायी जाये।

- प्रदूषणकारी उद्योग यथासंभव लगाये ही न जाये। उनकी जगह श्रम आधारित कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित किया जाये।
- डीजल, पेट्रोल चालित व्यक्तित वाहनों का उपयोग घटाया जाये, सार्वजनिक वाहनों का उपयोग किया जाए। बसों की जगह ट्रेन यात्राओं को वरीयता दी जाये।
- किसी भी कचरे) आर्गेनिक वेस्ट (को जलाया न जाये, खुला न फेंका जाये, बल्कि रिसाइकल कर आर्गेनिक खाद बनाया जाये।
- ध्वनि विस्तारक यंत्रों का प्रयाग यथासंभव घटाया जाये। इसके भयंकर दुष्परिणामों से जन – सामान्य को अ वगत कराया जाये।

प्रदूषण रहित वैकल्पिक ऊर्जा का उपयोग बढ़ाया जाये –:

- पेट्रोलियम ऊर्जा के स्थान पर पशु ऊर्जा का उपयोग बढ़ाया जाये। पशु ऊर्जा का उपयोग मैकेनिकल ऊर्जा एवं बायोगैस ऊर्जा के रूप में किया जा सकता है, जिससे कृषि ऊर्जा, घरेलू ईंधन व परिवहन ऊर्जा की आवश्यकताएं पूरी की जा सकती हैं। बैल से ग्रामीण स्तर पर विद्युत ऊर्जा भी बनायी जा सकती है।
- साइकिल के उपयोग का बढ़ाया जाये, इसके उपयोग में गौरव अनुभव किया जाए, चीन में साइकिलों की संख्या भारत से 8 गुना अधिक है। इसके उपयोग से प्रदूषण एवं राष्ट्रीय ऊर्जा संकट का बड़े पैमाने पर समा धान होगा। पेट्रोलियम पदार्थों में खर्च होने वाली विदेशी मुद्रा बचेगी, उपयोग करने वालों का स्वास्थ्य सु धरेगा। युगऋषि पं . श्रीराम शर्मा आचार्य ने साइकिल को 21 वीं सदी का वाहन घोषित किया है।
- भोजन पकाने, पानी गरम करने में सौर ऊर्जा का उपयोग बढ़ाया जाए, जहाँ संस्थाएं खर्च वहन कर सक ती हैं, वहाँ सौर विद्युत का उपयोग राष्ट्रीय कर्तव्य मानकर किया जाए।

ऊर्जा संरक्षण –:

) अ (भोजन पकाने में चैड़े तले के बरतनों का उपयोग किया जाए।

कचरे की सुव्यवस्था की जाये –:

- घरेलू कचरे को एक ही पात्र में डालने के बजाए , डिग्रेडेबिल तथा नोनडिग्रेडेबिल) प्लास्टिक , लोहा , कांच आदि (को अलग – अलग रखने की व्यवस्था की जाए। डिग्रेडेबिल वेस्ट से कम्पोस्ट या केंचुआ खाद बनाई जाए।
- गाँव के सामूहिक कचरे को जलाने या घूरे के रूप में फेंकने के बजाए कम्पोस्ट खाद बनाने में उपयोग कि या जाए।
- नगरों में गा बेज डिस्पोजल) घरेलू वेस्ट, बजारू यार्ड वेस्ट, सब्जी मंडी वेस्ट, रेस्टोरेंट वेस्ट आदि (एक समस्या बन गई है। शहरी कचरे से कम्पोस्ट खाद केंचुआ खान, ईंधन गैस एवं विद्युत बनाकर इस स मस्या को लाभकारी उद्योग के रूप में बदला जा सकता है।
- प्लास्टिक का उपयोग करना सीवेज एवं जानवरों के लिये भारी समस्या बन गया है। इन थैलियों के बनाने व उपयोग करने के नियमों को कड़ाई से लागू किया जाये।

निष्कर्ष –:

संजीव के के उपन्यासों में पर्यावरण संबंधी मुद्दे शामिल हैं जैसे पाँव तले की दूब, रणेन्द्र का उपन्यास ग्लोबल गाँव के देवता पर्यावरण के विविध मुद्दों व विकास के घातक प्रभावों में जीते मनुष्यों के समस्याओं, तकलीफों को चित्रित करता है। प्रकृति पर बेशरम व निष्ठुर आक्रमण। पर्यावरण वह है जो कि प्रत्येक जीव के साथ जुड़ा हुआ है हमारे चारों तरफ़ वह हमेशा व्याप्त होता है।। सामान्य अर्थों में यह हमारे जीवन को प्रभावित करने वाले सभी जैविक और अजैविक तत्वों, तथ्यों, प्रक्रियाओं और घटनाओं के समुच्चय से निर्मित इकाई है। यह हमारे चारों ओर व्याप्त है और हमारे जीवन की प्रत्येक घटना इसी के अन्दर सम्पादित होती है तथा हम मनुष्य अपनी समस्त क्रियाओं से इस पर्यावरण को भी प्रभावित करते हैं। इस प्रकार एक जीवधारी और उसके पर्यावरण के बीच अन्योन्याश्रय संबंध भी होता है। पर्यावरण के जैविक संघटकों में सूक्ष्म जीवाणु से लेकर कीड़ेमकोड़े–, सभी जीवपौधे आ जाते हैं और इसके साथ ही उनसे –जंतु और पेड़– जुड़ी सारी जैव क्रियाएँ और प्रक्रियाएँ भी। अजैविक संघटकों में जीवनरहित तत्वऔर उनसे जुड़ी प्रक्रियाएँ आती हैं, जैसे: चट्टानें, पर्वत, नदी,हवा और जलवायु के तत्व सहित कई चीजे इत्यादि रहती है।हम एक दूसरे के शिक्षक व विद्यार्थी दोनों ही हैं। आधुनिक युग में वैज्ञानिक सामान्यतः यह तय करता है कि मानव का प्र कृति से व्यवहारिक एवं सैद्धांतिक किस प्रकार का सहसंबंध है। अपने व्यवहारों में हम किन – किन नियमों से निर्देशित होते हैं । इस प्रकार के विचारों से वैज्ञानिकों की क्रियाओं से जो फल प्राप्ति होगी , उससे प्रकृति को कम से कम दोहन करते हुए स माज के उद्देश्यों एवं कार्यों को अधिक अच्छे ढंग से पूरा कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

[1] बासक, अनिंदिता – पर्यावरणीय अध्ययन Archived 2014-08-08 at the Wayback Machine, गूगल पुस्तक, (अभिगमन तिथि 04-08-2014

[2] आर॰ डी॰ दीक्षित, भौगोलिक चिंतन का विकास Archived 2014-07-29 at the Wayback Machine पृष्ठ सं॰ 253, गूगल पुस्तक (अभिगमन तिथि 25-07-2014)

[3] पर्यावरण और विकास, सुभाष शर्मा, प्रथम संस्करण 2017, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली

[4] समकालीन भारत की सामाजिक समस्याएँ, डॉसुरेश चन्द्र रजोरा ., चतुर्थ संस्कारण 2016, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर

[5] कुइयांजान, नासिरा शर्मा, प्रकाशन वर्ष 2005, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली

[6] मीठी नीम, कुसुम कुमार, प्रकाशन वर्ष 2012, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली

[7] मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, महुआ मांझी, प्रकाशन वर्ष 2015, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

[8] श्रीवास्तव , वी . के . एवं राव वी . पी . (2001) . पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी , वसुंधरा प्रकाशन , गोरखपुर।

[9] शर्मा , आर . सी . (1986) . पर्यावरण शिक्षा सर्विसेज , पब्लिशिंग हाउस , हमीदिया रोड , भोपाल एनवायरमेन्टल एजुकेशन , मेट्रोपोलिटन बुक कं . प्रा . लि . नई दिल्ली।